National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(64): 16-18
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

प्रो. जवाहरलाल
आचार्य एवं अध्यक्ष सर्वदर्शन विभाग,
श्री ला. ब. शा. रा. सं. विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली 110016

Correspondence:
प्रो. जवाहरलाल
आचार्य एवं अध्यक्ष सर्वदर्शन विभाग,
श्री ला. ब. शा. रा. सं. विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली 110016

जीवनदर्शनशास्त्रयोरन्तःसम्बन्धः

प्रो. जवाहरलाल

न निर्णीते नानुपलब्धे अर्थे न्यायः प्रवर्तते किन्तु संशयिते अर्थे। इत्यदिभिर्वाक्यैः ज्ञायते यत् सर्वेषां भारतीयदर्शनानां प्रवृत्तिः जिज्ञासया अभवदिति। तस्याः जिज्ञासायाः मूलमुद्देश्यं वर्तते मानवजीवनस्य कल्याणं अनुभवानां मानवीयमूल्यानाञ्चान्वेषणमिति। वैद्ककालादेव भारतीयमेधा मानवजीवनस्य याथार्थ्यं चिन्तयन् प्रवृत्ताः सन्ति।

वैदिक काल से ही भारतीय मेधा जीवन के यथार्थ का चिन्तन कर रहा है जीवन के मूल्यों के अन्वेषण में लगा हुआ है ऋग्वेद के अनेकों दार्शनिक सूक्तों में वैश्विक सृष्टि के अन्वेषण विषयक जिज्ञासा की झलक मिलती है। वैदिक काल से ही दार्शनिक चिन्तन द्वारा जीवन और जगत के रहस्यों को सुलझाने का प्रयास वैदिक ऋषियों द्वारा होता रहा है। जीवन और दर्शन का सम्बन्ध अनादि काल से रहा है। भारतीय परम्परा में दर्शन का अर्थ केवल सैद्धान्तिक चिन्तन नहीं, अपितु जीवन के चरम उद्देश्य की ओर मार्गदर्शन भी है। अतः जीवन और दर्शन को परस्पर पूरक एवं अन्तः सम्बन्धी कहा जाता है। वेदों में मानव जीवन को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों के साधन के रूप में देखा गया है। जगत की सृष्टि अनादि काल से ही रहस्यात्मक बनी है

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥ १॥

न आकाश था, न पृथ्वी, न समय, न प्राणी। इसने ब्रह्मांडीय निराकार स्थिति का संकेत दिया है।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास॥२॥
को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥६॥

हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं दयामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ १॥

इस सृष्टि के निर्माण से पूर्व हिरण्यगर्भ (परमात्मा) विदयमान था। वही उत्पन्न जगत् का एकमात्र (अद्वितीय) स्वामी है। वही इस पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष को धारण करता है। इस सुखदायी परमेश्वर ('क' नामक प्रजापति) की हम हवि के द्वारा उपासना (पूजा) करते हैं।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २॥

जो आत्मज्ञान एवं बल (शक्ति) का देने वाला है, जिसकी आज्ञा का पालन सभी देवता लोग करते हैं, अर्थात् जिसके उत्कृष्ट शासन को सब लोग मानते हैं, जिसकी शरणरूपी छाया अमृत के समान है तथा जिसकी शरण में न जाना अपनी मृत्यु को अपने समीप बुलाना है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम उत्तम रूप से उपासना करते हैं

ॐ सहस्त्रशीर्षा पुरुषःसहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमि सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्द्शाङ्गुलम्।

किसने यह सृष्टि की उत्पत्ति की और क्यों?

सूक्त में जहां जिज्ञासा, संशय और तर्क के महत्त्व का दिग्दर्शन होता है। यह केवल धार्मिक या पौराणिक नहीं, बल्कि दार्शनिक विचारों का प्रारंभ है। वहीं पर जब पुरुषसूक्त का अध्ययन करते हैं तो **सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्** इत्यादि मन्त्रों से विराट पुरुष को जगत् के कर्ता के रूप में विचार किया गया है। उस विराट पुरुष को यज्ञ के रूप मं संकल्पना की गई है। वह विराट यज्ञ पुरुष ही स्वयं उस यज्ञ का हविष बनता है। स्वयं ही जीव भाव को भी प्राप्त होता। यज्ञ के रूप में संकल्पित विराट् पुरुष के शरीर से जगत की सृष्टि का प्रतिपादन किया गया है। उस पुरुष से सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि होती है तथा उस सृष्टि में ही वह विराट् पुरुष व्याप्त होकर विद्यमान रहता है।

उपनिषद् का जब अध्ययन करते हैं तो देखते हैं कि उपनिषद् में दर्शन का आरम्भ ही जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष से होता है। उपनिषद् जीवन को आत्मा और ब्रह्म के अद्वैत सम्बन्ध में समझाते हैं। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है - **सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।** (मुण्डकोपनिषद् 3.1.5) अर्थात् आत्मा की प्राप्ति सत्य और तप के माध्यम से ही सम्भव है। इससे स्पष्ट होता है कि जीवन का चरम लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार है और दर्शन उसी की साधना का मार्गदर्शन करता है।

उपषनिद् साहित्य में अनेक विचार दृष्टिगत होते हैं कही **यतो वा इमानि नभूतानि जायन्ते** के द्वारा उसी विराटपुरुष को ब्रह्म के रूप में जगज्जन्मादि का कारण कहा गया है तथा **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** के द्वारा उस ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया है। कहीं पर **नेह नानास्ति किञ्चन** के द्वारा विचार किया गया है। कही पर **आत्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः -** इत्यादि के रूप में जगत्सृष्टि का विचार किया गया है। इस प्रकार जो अन्वेषण की परम्परा रही है वह अनादिकाल से ही चली आ रही जो आज भी निरन्तर है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ (१६)

श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण ने जीवन और दर्शन के समन्वय की व्याख्या करते हैं। जीवन में समत्व, संतुलन और आत्मसंयम आत्मानुभूति को ही दार्शनिक जीवन की पहचान माना गया है। इस प्रकार भारतीय परम्परा में दर्शन का स्वरूप केवल बुद्धिजीवी विमर्श न होकर जीवनोपयोगी साधना है। जीवन दर्शन का विषय है और दर्शन जीवन की दिशा। दोनों का अन्तः सम्बन्ध ही भारतीय चिन्तन की मौलिकता है।

यद्यपि **कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः** इत्यादि के द्वारा महान नैयायिक आचार्य उदयन ने स्पष्ट किया है कि ऐसा कोई विषय नही है जिस पर वैदिक ऋषियों ने विचार न किया हो तथापि उन कुछ विचार के ऐसे विषय समुपस्थित होते हैं जिनका हमें ज्ञान नही होता उन विषयों को वर्तमान समाज में लाना हमारा नैतिक कर्तव्य है इसी उद्देश्य से आज जो अनुसन्धान की परम्परा प्रवाह मान है जिसका भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 में भी उल्लेख किया गया है। इस संवाद कार्यक्रम के माध्यम से हम लोग भी निश्चित ही मानविकी दृष्टि से दर्शनशास्त्रीय विविध पहलुओं का विचार करने का प्रयास करेंगे। यद्यपि सम्पूर्ण दर्शन शास्त्र का सम्बन्ध मानव जीवन से ही है तथापि कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों का उल्लेख मैं अवश्य करने का प्रयास करूंगा।

वर्तमान सन्दर्भ में जब दर्शनशास्त्रीय चिन्तन के विविध पहलुओं पर विचार करते हैं तो दर्शन शास्त्र को अनेक दृष्टि से हम चिन्तन कर सकते हैं। क्योंकि दर्शनशास्त्र भारतीय संस्कृति और मानवीय जीवन के मूल्यों का प्रधान स्तम्भ हैं। भारतीयदर्शन में मानवीय जीवन के मूलभूत प्रश्नों पर प्रामाणिक चिंतन प्राप्त है। इस उपक्रम में भारतीय दर्शन शास्त्र के ज्ञानात्मक पक्ष, आचारमीमांसा पक्ष बौद्धिकपक्ष पर यथा मति विचार साझा करने का प्रयास करूंगा। दर्शन शास्त्र का मानव जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध है या यह कहें कि ये सभी दर्शन मानवजीवन के विविध पक्षों का अपने अपने दृष्टि से चिन्तन करते हैं। इन दर्शन शास्त्रों का अध्ययन के लिये इनके तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, आचारमीमांसा को समझना आवश्यक है। तभी हम इनके स्वारस्य इनके सिद्धान्त व इनके वैशिष्ट्य को समझ सकेंगे। चार्वाक दर्शन भूतचतुष्टय, बौद्ध में द्वादशायतन (द्वादशनिदान) आर्यसत्य, जैन में सप्ततत्त्व, या षड्द्रव्य, सांख्यशास्त्र में पच्चीस तत्त्व, न्याय षोडशपदार्थ, वैशेषिक में सप्तपदार्थ, अद्वैत ब्रह्म, ज्ञानमीमांसा = प्रमाण संख्या विप्रतिपत्ति, प्रमाणों के स्वरूप विचार, प्रमेयों द्वारा प्रमेय सिद्धि

प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणादसौगतो पुनः अर्हताः प्रत्यक्षमनुमानं चेति अनुमानं च तच्चापि साङ्ख्याः शब्द च ते उभे।
न्यायैकदेशिनोप्येवमुपमानं च केचन।
अर्थापत्त्यासहैतानि चत्वार्याह प्रभाकराः ।
अभावषष्ठान्येतानि भाट्टाः वेदान्तिनस्तथा।
संभवैतिह्ययुक्तानि तानि पौराणिकाः जगुः।

वहीं न्यायशास्त्र में दुख का मूल कारण अज्ञान को बताया तथा दुख की निवृत्ति में अज्ञान की निवृत्ति को कारण बताया को माना है अज्ञान की निवृत्ति कैसे होगी तो जो द्वादश प्रमेय हैं उनके ज्ञान से ही अज्ञान की निवृत्ति हो सकती है। इन द्वादश प्रमेयों का ज्ञान कैसे हो प्रमाणों के द्वारा प्रमाणों के द्वारा स्वरूप ज्ञान होने के उपरान्त न्याय दर्शन में साधन के रूप में तत्त्वाभ्यास की चर्चा की गई है। अष्टाङ्गयोग की चर्चा की गई है। जब तक यमनियमादि का अनुष्ठान नही करेंगे तब तक तत्त्वाभ्यास नही होगा। यह तत्त्वाभ्यास ही न्याय दर्शन की आचार मीमांसा है।

वैशेषिक दर्शन में भी यतोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः सूत्र द्वारा अभ्युदय सिद्धि और निःश्रेयसिद्धि के लिये उपाय भूत आचारमीमांसा का उल्लेख किया है। अभ्युदय के लिय यागादि की

चर्चा है और निःश्रेयस के लिये अष्टाङ्गयोग की। योगज प्रत्यक्ष के द्वारा ही आत्मतत्त्वका ज्ञान योगजो द्विविधः युक्त युञ्जानभेदतः

अद्वैतवेदान्तदर्शन का ब्रह्म विषयक सिद्धांत। **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः** ब्रह्म एक मात्र तत्त्व है, जो सत् चित् आनन्द रूप है जगत् का कारण अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। **जन्माद्यस्य यतः** सूत्र की व्याख्या में आचार्य शंकर ने ब्रह्म की जगत्कारणता का स्पष्ट व्याख्यान किया है। उस ब्रह्म का साक्षात्कार ही ब्रह्मात्मैकत्व विज्ञान है। वहां प्रमाण के रूप में **शास्त्रयोनित्वात्** सूत्र की व्याख्या करते हुये योनि शब्द को कारणवाची तथा प्रमाणवाची कहा है। अर्थात् उसमें केवल एक श्रुति ही प्रमाण है यह अद्वैतवेदान्त का ज्ञान मीमांसा का पक्ष है। भारतीय दर्शन का यह पक्ष सत्य, अस्तित्व, आत्मा, ईश्वर, मोक्ष आदि के सिद्धान्त को पूर्ण करता है। शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्रभाष्य में तर्क और शास्त्र प्रमाण के आधार पर ब्रह्म की जगत्कारणता और आत्मा और ब्रह्म ात्मैकत्वविज्ञान को सिद्ध किया गया है। जो इस दर्शन का महत्त्वपूर्ण विषय है।

इसी प्रकार साख्ययोग के शास्त्रीय चिन्तन को देखें तो त्रिविधदुखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः सूत्र में प्रकृतिपुरुष विवेकज्ञान को ही दुखनिवृत्ति का कारण माना है **पञ्चविंशति तत्त्वज्ञः यत्र कुत्र आश्रमे वसन् जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः** प्रकृतिपुरुष विवेक ज्ञान कैसे होगा उसके लिये सांख्यशास्त्र में प्रमाणों की व्यवस्था है।

दृष्टमनुमानमाप्तवचनञ्च सर्वप्रमाण सिद्धत्वात् त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धिः

साथ ही निदिध्यासन के क्रम में अभ्यास और वैराग्य ईश्वर प्रणिधान अष्टाङ्गयोग जैसे साधनों पर विचार किया गया है।

जैन परम्परा का त्रिरत्न सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र की चर्चा की गई है। **सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः** सम्यक् दर्शन क्या है **तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक् दर्शनम् जीवाजीवादि सप्त तत्त्वानि, के द्वारा तत्त्वमीमांसा की चर्चा की गई है। प्रमाणे द्वे, परोक्षं प्रत्यक्षं च । मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलानि ज्ञानम्। ज्ञानमीमांसा आचारमीमांसा के अन्तर्गत** व्रतो की व्यवस्था की गई है। जैन परम्परा में व्रतों का विशेष महत्त्व है। सम्यक् दर्शन के प्रतिबन्धक ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय आदि कर्मों के नाश के लिये **तपसा निर्जरा च** इत्यादि सूत्रवाक्यों के द्वारा कर्मों की निर्जरा बताई गई है।

बौद्ध दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह केवल दार्शनिक अवधारणा ही नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन और व्यवहारिक आचरण का आधार भी है। प्रतीत्य का अर्थ है – आश्रय, कारण, परनिर्भरता और समुत्पाद का अर्थ है उत्पत्ति। इस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाद का तात्पर्य है सभी वस्तुएँ और घटनाएँ कारण-कार्य संबंध से उत्पन्न होती हैं, वे स्वतंत्र नहीं हैं। अस्मिन् सति इदं भवति, अस्मिन् असति इदं न भवति; बौद्ध दर्शन आत्मा या ईश्वर की स्थायी सत्ता को अस्वीकार करता है। जगत और प्रपंच में सब कुछ क्षणभंगुर दुखं दुखम्, क्षणिक- क्षणिकं, शून्यं शून्यं, स्वलक्षणं स्वलक्षणम्। है। वस्तुएँ स्वतंत्र रूप से नहीं, बल्कि परस्पर कारण और परिस्थितियों पर आधारित होती हैं।

प्रतित्यसमुत्पाद की श्रृंखला - प्रतित्यसमुत्पाद का प्रयोग बौद्ध दर्शन में दुःख की उत्पत्ति और उसकी निरोध प्रक्रिया आर्यसत्य को समझाने में हुआ है। जैसे द्वादश निदान द्वादश श्रृंखला कह सकते हैं। बुद्ध का उपदेश है - सर्वं दुःखं दुःखम्।

अविद्या (अज्ञानम्) – अज्ञान ही समस्त दुःख का मूल कारण है। संस्कार (वासनाएँ, संस्काराः) – अज्ञान से कर्म-संस्कार उत्पन्न होते हैं। विज्ञानम् (चेतना) – संस्कार से चैतन्य/विज्ञान का उद्भव। नामरूपम् (मन और शरीर) – विज्ञान के आधार से नाम (मन) और रूप (शरीर) उत्पन्न होते हैं। षडायतनानि (इन्द्रियाँ) – नामरूप से छः इन्द्रियाधार (नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन) का निर्माण। स्पर्शः – इन्द्रियों और विषयों के संयोग से स्पर्श उत्पन्न होता है। वेदनाः – स्पर्श से सुख, दुःख अथवा तटस्थ अनुभूति। तृष्णा – वेदना से वासनाजन्य लालसा और आसक्ति। उपादानम् (आसक्ति) – तृष्णा से वस्तुओं का ग्रहण, आसक्ति और मोह। भावः (कर्मभव) – उपादान से कर्म-संचय। जातिः (जन्म) – कर्म से पुनर्जन्म। जरामरणम् (बुढापा और मृत्यु) – जन्म से जरा-मरण, शोक, दुःख और व्याधि। 5. प्रतित्यसमुत्पाद और दुःख-निरोध ; चतुर्थ आर्यसत्य जब अविद्या और तृष्णा का निरोध होता है, तब यह श्रृंखला टूट जाती है। अविद्यानिरोधात् संस्कारनिरोधः संस्कारनिरोधात् दुःखनिरोधः। इस प्रकार प्रतित्यसमुत्पाद केवल दुःख की उत्पत्ति ही नहीं बताता, बल्कि उसके निरोध का मार्ग भी दिखाता है। प्रीत्यसमुत्पाद के द्वारा द्वादशनिदान और चार आर्यसत्य को सहजता से समझ सकते हैं।

6. दार्शनिक महत्व

नागार्जुन - प्रतित्यसमुत्पाद का अर्थ है शून्यता। वस्तुएँ स्वभावतः नित्य नहीं हैं, वे परस्पर कारणों से उत्पन्न हैं। "याः प्रतीत्यसमुत्पादाः शून्यतां प्रचक्ष्महे (माध्यमिककारिका अर्थात् प्रतित्यसमुत्पाद ही शून्यता है।

योगाचार - इसे विज्ञानमात्रवाद से जोड़ते हैं; सब कुछ चित्त या विज्ञान के कारण उत्पन्न होता है।

थेरवाद (पाली परंपरा) - प्रतित्यसमुत्पाद मुख्यतः दुःख और पुनर्जन्म की व्याख्या के लिए प्रयोग होता है।

"यस्मिन् न विद्यते किंचिदन्यत्र च न विद्यते। तदज्ञानस्य नाशेन भवेद्दुःखनिवृत्तिता॥

इसी प्रकार सभी शास्त्रों में तत्त्वमीमांसा ज्ञानमीमांसा के क्रम से उन उन दर्शनों में प्रतिपादित तत्त्वों को व्यवस्थापित करते हैं। इनके द्वारा ही हम मानवजीवन के मुख्य प्रयोजन रूप परमपुरुषार्थ मोक्ष लाभ करते हैं। उसके लिये आचार्यों ने आचार मीमांसा की व्यवस्था की है जैसे अद्वैत मत में देखें तो श्रुति कहती है **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्य** । अर्थात् श्रवण मनन और निदिध्यासन के द्वारा या सविकल्पक निर्विकल्पक समाधि के अनुष्ठान से ब्रह्मात्मैकत्व विज्ञान सिद्ध होगा। और यही दर्शनशास्त्र की आचारमीमांसा भी है।